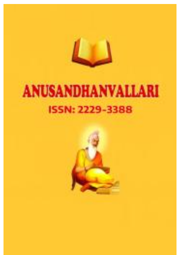

Anusandhanvallari
Vol 2024, No.1
March 2024
ISSN 2229-3388

‘चिति’ और ‘विराट’ की अवधारणा: पंडित दीनदयाल उपाध्याय के राष्ट्र एवं समाज-दर्शन का विश्लेषण

कुणाल
शोधार्थी
इतिहास विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा

संजय झा
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
इतिहास विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा

सारांश

भारतीय राजनीतिक चिंतन की आधुनिक परंपरा में पंडित दीनदयाल उपाध्याय का स्थान उन विचारकों में है जिन्होंने स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दिशा के प्रश्न को भारतीय सभ्यतागत अनुभव, सांस्कृतिक चेतना और दार्शनिक परंपरा के आधार पर समझने का प्रयास किया। उनका प्रतिपादित *एकात्म मानववाद* केवल व्यक्ति और समाज के संबंध की दार्शनिक व्याख्या नहीं है, बल्कि राष्ट्र, संस्कृति, राज्य, समाज तथा विकास के पारस्परिक संबंधों का एक समग्र वैचारिक प्रतिमान प्रस्तुत करता है। इस प्रतिमान में ‘चिति’ और ‘विराट’ की अवधारणाएँ विशेष महत्त्व रखती हैं। उपाध्याय के अनुसार ‘चिति’ राष्ट्र की अंतर्निहित आत्मा, सांस्कृतिक प्रकृति और मूल्याधार का प्रतिनिधित्व करती है, जबकि ‘विराट’ उस चेतना से प्रेरित

समाज की संगठित, सक्रिय और सृजनात्मक शक्ति है। इस प्रकार 'चिति' राष्ट्र के अस्तित्व को दिशा और वैधता प्रदान करती है तथा 'विराट' उस दिशा को सामाजिक-राजनीतिक क्रियाशीलता में रूपांतरित करता है।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य 'चिति' और 'विराट' की अवधारणाओं का दार्शनिक, ऐतिहासिक तथा समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना है। अध्ययन में यह प्रतिपादित किया गया है कि उपाध्याय का राष्ट्र-दर्शन राष्ट्र को केवल राजनीतिक राज्य, भौगोलिक सीमा अथवा नागरिकों के संविदात्मक समूह के रूप में स्वीकार नहीं करता, बल्कि उसे सांस्कृतिक चेतना और सामाजिक संगठन की दीर्घकालिक प्रक्रिया के रूप में देखता है। लेख यह भी परीक्षण करता है कि 'चिति' और 'विराट' के माध्यम से उपाध्याय व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के मध्य किस प्रकार की एकात्मता स्थापित करना चाहते हैं। साथ ही, इस वैचारिक प्रतिमान की आलोचनात्मक समीक्षा करते हुए सांस्कृतिक बहुलता, आधुनिक लोकतंत्र, संवैधानिक नागरिकता तथा सामाजिक विविधता के संदर्भ में इसकी संभावनाओं और सीमाओं का परीक्षण किया गया है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि 'चिति' और 'विराट' भारतीय राजनीतिक चिंतन में सांस्कृतिक आधार और सामाजिक क्रियाशीलता के संबंध को समझने का एक महत्त्वपूर्ण स्वदेशी वैचारिक ढाँचा प्रस्तुत करते हैं; तथापि आधुनिक बहुलतावादी लोकतंत्र में उनकी व्याख्या को समावेशी, संवादात्मक और संवैधानिक मूल्यों के अनुरूप विकसित करना आवश्यक है।

बीज-शब्द (Keywords) : पंडित दीनदयाल उपाध्याय, चिति, विराट, एकात्म मानववाद, राष्ट्रवाद, समाज-दर्शन, सांस्कृतिक चेतना, भारतीय राजनीतिक चिंतन।

1. प्रस्तावना

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत के समक्ष केवल राजनीतिक सत्ता-हस्तांतरण का प्रश्न नहीं था, बल्कि राष्ट्र-निर्माण की वैचारिक दिशा का प्रश्न भी उतना ही महत्त्वपूर्ण था। एक ओर आधुनिक राज्य, लोकतंत्र, औद्योगीकरण और नियोजित विकास की आवश्यकताएँ थीं, तो दूसरी ओर भारतीय समाज की दीर्घ सांस्कृतिक परंपरा, सामाजिक विविधता और सभ्यतागत अनुभव को आधुनिक राजनीतिक संरचना के साथ समन्वित करने की चुनौती थी। इसी वैचारिक पृष्ठभूमि में पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने *एकात्म मानववाद* के माध्यम से भारत-केंद्रित राजनीतिक और सामाजिक दर्शन विकसित करने का प्रयास किया।[1] उपाध्याय के चिंतन का केंद्रीय आग्रह यह था कि किसी समाज की राजनीतिक और आर्थिक संस्थाओं को उसकी ऐतिहासिक प्रकृति, सांस्कृतिक अनुभव तथा जीवन-मूल्यों से पूर्णतः पृथक करके नहीं समझा जा सकता। उनके अनुसार पश्चिमी आधुनिकता से विकसित पूँजीवाद और समाजवाद दोनों ने मनुष्य के जीवन के कुछ विशेष आयामों को अत्यधिक महत्त्व दिया, जबकि मानव-अस्तित्व मूलतः शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की समन्वित संरचना है। इसी प्रकार व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और व्यापक मानवता परस्पर विरोधी इकाइयाँ नहीं, बल्कि एक क्रमिक और अंतर्संबद्ध व्यवस्था के अंग हैं।[2] 'चिति' और 'विराट' की अवधारणाएँ

Anusandhanvallari
Vol 2024, No.1
March 2024
ISSN 2229-3388

इसी समग्र दृष्टि के राष्ट्र और समाज संबंधी आयाम को स्पष्ट करती हैं। उपाध्याय 'चिति' को किसी राष्ट्र की वह अंतर्निहित चेतना मानते हैं जो उसकी सांस्कृतिक प्रकृति, मूल्य-बोध और ऐतिहासिक व्यक्तित्व को दिशा देती है। इसके विपरीत 'विराट' उस समाज की संगठित एवं जागृत सामूहिक शक्ति है, जो 'चिति' से प्रेरणा लेकर सामाजिक संस्थाओं, राष्ट्रीय संगठन और सार्वजनिक जीवन में सक्रिय होती है। उपाध्याय के शब्दों में, 'चिति' राष्ट्र की आत्मा है और 'विराट' राष्ट्र-जीवन को सक्रिय करने वाली शक्ति है।[3]

यहाँ यह प्रश्न विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है कि क्या 'चिति' केवल सांस्कृतिक स्मृति का पर्याय है, अथवा वह राष्ट्र के नैतिक और संस्थागत विकास के लिए कोई व्यापक सिद्धांत भी प्रस्तुत करती है? इसी प्रकार 'विराट' को क्या केवल राजनीतिक संगठन या राज्य-शक्ति के रूप में समझा जाना चाहिए, अथवा यह समाज की व्यापक सृजनात्मक क्षमता का प्रतिनिधित्व करता है? प्रस्तुत लेख इन प्रश्नों की ऐतिहासिक-वैचारिक समीक्षा करता है।

2. अध्ययन के उद्देश्य

इस शोध-पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. पंडित दीनदयाल उपाध्याय के राष्ट्र एवं समाज-दर्शन में 'चिति' की अवधारणा का विश्लेषण करना।

2. **'विराट' की अवधारणा तथा उसके सामाजिक और राजनीतिक निहितार्थों का अध्ययन करना।**
3. **'चिति' और 'विराट' के पारस्परिक संबंध को एकात्म मानववाद के व्यापक वैचारिक ढाँचे में समझना।**
4. **उपाध्याय के राष्ट्र-दर्शन में संस्कृति, समाज, राज्य और व्यक्ति के संबंधों का परीक्षण करना।**
5. **आधुनिक लोकतंत्र, सांस्कृतिक बहुलता और संवैधानिक नागरिकता के संदर्भ में इन अवधारणाओं की आलोचनात्मक समीक्षा करना।**
6. **भारतीय राजनीतिक चिंतन में 'चिति-विराट' प्रतिमान के समकालीन वैचारिक महत्त्व का मूल्यांकन करना।**

3. शोध-पद्धति और सैद्धांतिक आधार

यह अध्ययन मुख्यतः **ऐतिहासिक-व्याख्यात्मक एवं वैचारिक-विश्लेषणात्मक पद्धति** पर आधारित है। प्राथमिक स्रोतों के रूप में पंडित दीनदयाल उपाध्याय के *एकात्म मानववाद* संबंधी व्याख्यानों तथा उनके राजनीतिक और वैचारिक लेखन का उपयोग किया गया है। द्वितीयक स्रोतों में भारतीय राजनीतिक चिंतन, राष्ट्रवाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, एकात्म मानववाद तथा दीनदयाल उपाध्याय के विचारों पर उपलब्ध विद्वत्तापूर्ण अध्ययनों को सम्मिलित किया गया है। सैद्धांतिक रूप से अध्ययन तीन स्तरों पर कार्य करता है। प्रथम, 'चिति' को सांस्कृतिक-दार्शनिक अवधारणा के रूप

में देखा गया है। द्वितीय, 'विराट' को सामाजिक संगठन और सामूहिक क्रियाशीलता की अवधारणा के रूप में विश्लेषित किया गया है। तृतीय, दोनों के संबंध को राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना और उसके संस्थागत-सामाजिक रूपांतरण के मध्य संबंध के रूप में समझा गया है।

यह दृष्टिकोण उपाध्याय के विचारों की केवल प्रशंसात्मक प्रस्तुति तक सीमित नहीं है। एक अंतरराष्ट्रीय स्तर के अकादमिक अध्ययन के लिए यह आवश्यक है कि किसी भी राजनीतिक दर्शन को उसके आंतरिक तर्क के साथ-साथ उसके आलोचनात्मक प्रश्नों के संदर्भ में भी पढ़ा जाए। इसलिए प्रस्तुत अध्ययन सांस्कृतिक एकता, विविधता, नागरिकता और आधुनिक राज्य के प्रश्नों के संदर्भ में 'चिति' और 'विराट' की वैचारिक सीमाओं पर भी विचार करता है।

4. एकात्म मानववाद की वैचारिक पृष्ठभूमि

दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद 1960 के दशक में भारतीय राजनीतिक चिंतन के समक्ष उपस्थित उस प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयास था कि स्वतंत्र भारत के विकास और राज्य-व्यवस्था का दार्शनिक आधार क्या होना चाहिए। उपाध्याय ने पश्चिमी राजनीतिक विचारधाराओं की उपयोगिता को पूर्णतः अस्वीकार करने के स्थान पर उनके सीमित और एकांगी स्वरूप की आलोचना की। उनके अनुसार पूँजीवाद व्यक्ति की स्वतंत्रता और आर्थिक गतिविधि को अत्यधिक महत्त्व देता है, जबकि समाजवाद अथवा साम्यवाद सामाजिक समानता और सामूहिक संरचना पर बल देता है; परंतु दोनों ही स्थितियों में मनुष्य की समग्रता पर्याप्त रूप से प्रतिपादित नहीं होती।[4] एकात्म मानववाद में मनुष्य को शरीर, मन,

बुद्धि और आत्मा की समन्वित इकाई माना गया है। मानव-जीवन के चार पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—को भी परस्पर विरोधी न मानकर संतुलित जीवन-व्यवस्था का अंग माना गया है। इसी प्रकार व्यक्ति और समाज के संबंध को संघर्ष के बजाय एकात्मता के आधार पर समझने का प्रयास किया गया है। इस दार्शनिक दृष्टि का विस्तार राष्ट्र की अवधारणा तक पहुँचता है। यदि व्यक्ति केवल आर्थिक प्राणी नहीं है, तो राष्ट्र भी केवल आर्थिक हितों का समूह नहीं हो सकता। यदि मनुष्य का जीवन बहुआयामी है, तो राष्ट्र का जीवन भी भूगोल, जनसंख्या, राज्य और अर्थव्यवस्था तक सीमित नहीं है। उपाध्याय के राष्ट्र-दर्शन में राष्ट्र की विशिष्टता उसके सांस्कृतिक जीवन और सामूहिक चेतना से निर्मित होती है। इसी बिंदु पर 'चिति' की अवधारणा केंद्रीय महत्त्व ग्रहण करती है।

5. 'चिति' की अवधारणा: राष्ट्र की अंतर्निहित चेतना

'चिति' उपाध्याय के राष्ट्र-दर्शन की सर्वाधिक विशिष्ट अवधारणाओं में से एक है। सामान्य अर्थ में इसे किसी राष्ट्र की अंतर्निहित सांस्कृतिक चेतना अथवा उसकी आत्मा कहा जा सकता है। किंतु उपाध्याय के चिंतन में इसका अर्थ केवल अतीत के गौरव, परंपरा या सांस्कृतिक स्मृति तक सीमित नहीं है। 'चिति' वह आंतरिक सिद्धांत है जो किसी राष्ट्र के जीवन को दिशा प्रदान करता है और उसके सामाजिक तथा सांस्कृतिक निर्णयों के मूल्यांकन का आधार बनता है।[5] उपाध्याय के अनुसार राष्ट्रों का निर्माण केवल समान राजनीतिक सत्ता से नहीं होता। राज्य और राष्ट्र में अंतर है। राज्य एक राजनीतिक संस्था है और परिस्थितियों के अनुसार उसका स्वरूप बदल सकता है; किंतु राष्ट्र एक गहरी ऐतिहासिक और सांस्कृतिक चेतना का परिणाम है। राष्ट्र का अस्तित्व उसके लोगों की साझा स्मृतियों, जीवन-मूल्यों, सांस्कृतिक

अनुभवों और एक विशिष्ट सामूहिक पहचान से संबंधित है। 'चिति' के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण बिंदु यह है कि उपाध्याय संस्कृति को स्थिर और अपरिवर्तनीय वस्तु के रूप में नहीं देखते। उनके व्याख्यानों में सामाजिक कुरीतियों और राष्ट्रीय एकता को बाधित करने वाली परंपराओं को समाप्त करने की आवश्यकता स्वीकार की गई है। उदाहरण के लिए, अस्पृश्यता जैसी प्रथाओं को राष्ट्रीय एकता के लिए हानिकारक मानते हुए वे सामाजिक सुधार की आवश्यकता पर बल देते हैं।[6] इससे यह स्पष्ट होता है कि 'चिति' की अवधारणा को केवल अतीत की प्रत्येक परंपरा के संरक्षण के रूप में नहीं समझा जा सकता।

इस दृष्टि से 'चिति' का वास्तविक प्रश्न यह है कि कौन-से सांस्कृतिक मूल्य समाज के जीवन, एकता और नैतिक विकास को दिशा देते हैं। अतः 'चिति' को राष्ट्र की *normative consciousness* **अर्थात् मूल्यपरक चेतना के रूप में भी समझा जा सकता है। यह राष्ट्र को केवल यह नहीं बताती कि वह ऐतिहासिक रूप से क्या रहा है, बल्कि यह भी संकेत करती है कि उसे किन मूल्यों के आधार पर अपने सामाजिक और राजनीतिक जीवन का विकास करना चाहिए।**

6. 'विराट' की अवधारणा: जागृत सामूहिक शक्ति

यदि 'चिति' राष्ट्र की आंतरिक चेतना है, तो 'विराट' उस चेतना की सक्रिय और संगठित अभिव्यक्ति है। उपाध्याय 'विराट' की तुलना शरीर में प्राण से करते हैं। जिस प्रकार प्राण शरीर के विभिन्न अंगों को जीवन और क्रियाशीलता प्रदान करता है, उसी प्रकार 'विराट' समाज की विविध संस्थाओं, समूहों और व्यक्तियों को सामूहिक उद्देश्य के लिए सक्रिय करता है।[7] इस अवधारणा का महत्त्व यह है कि उपाध्याय राष्ट्र को

केवल भावनात्मक या सांस्कृतिक इकाई के रूप में नहीं देखते। सांस्कृतिक चेतना तभी प्रभावी हो सकती है जब वह सामाजिक जीवन में संगठन, सहयोग और क्रियाशीलता के रूप में अभिव्यक्त हो। इस प्रकार 'विराट' निष्क्रिय सांस्कृतिक पहचान के स्थान पर जागृत सामाजिक शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है।

उपाध्याय के अनुसार किसी समाज में भाषा, व्यवसाय, क्षेत्र और अन्य आधारों पर विविधता स्वाभाविक है। किंतु जब सामूहिक चेतना जागृत होती है, तो यह विविधता अनिवार्यतः संघर्ष का कारण नहीं बनती। समाज के विभिन्न अंग एक शरीर के विभिन्न अंगों की तरह अपने-अपने कार्य करते हुए व्यापक एकता में सहयोग कर सकते हैं।[8] यहाँ 'विराट' की अवधारणा को राज्य के साथ पूर्णतः समान नहीं माना जाना चाहिए। राज्य 'विराट' की अभिव्यक्ति का एक माध्यम हो सकता है, किंतु समाज की जागृत शक्ति राज्य से व्यापक है। परिवार, समुदाय, शैक्षणिक संस्थाएँ, आर्थिक संगठन, स्वैच्छिक संस्थाएँ और अन्य सामाजिक संरचनाएँ भी सामूहिक जीवन की सक्रियता में योगदान करती हैं। इसलिए 'विराट' का विचार नागरिक समाज, सामाजिक सहयोग और सामूहिक उत्तरदायित्व की व्यापक अवधारणा से संवाद स्थापित करता है।

7. 'चिति' और 'विराट': दिशा और शक्ति का संबंध

उपाध्याय के राष्ट्र-दर्शन में 'चिति' और 'विराट' को अलग-अलग अवधारणाओं के रूप में नहीं समझा जा सकता। 'चिति' दिशा प्रदान करती है और 'विराट' उस दिशा को शक्ति और क्रियाशीलता प्रदान

करता है। यदि 'चिति' के बिना 'विराट' हो, तो सामूहिक शक्ति दिशाहीन हो सकती है; इसके विपरीत यदि 'विराट' के बिना 'चिति' हो, तो सांस्कृतिक चेतना निष्क्रिय और अप्रभावी रह सकती है।

इसे निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

चिति → मूल्य और दिशा → सामाजिक प्रेरणा → विराट → संगठन एवं सामूहिक क्रिया → राष्ट्रीय जीवन

यह क्रम उपाध्याय के राष्ट्र-दर्शन में संस्कृति और राजनीति के संबंध को स्पष्ट करता है। राजनीतिक संस्थाएँ शून्य में निर्मित नहीं होतीं; वे समाज की नैतिक और सांस्कृतिक संरचना से प्रभावित होती हैं। परंतु केवल सांस्कृतिक चेतना भी पर्याप्त नहीं है। उसे संस्थागत और सामाजिक ऊर्जा में परिवर्तित होना आवश्यक है। इस दृष्टि से 'विराट' को लोकतांत्रिक समाज की *collective agency* **अर्थात् सामूहिक कार्य-क्षमता के रूप में समझा जा सकता है। जब नागरिक केवल निजी हितों तक सीमित न रहकर सार्वजनिक जीवन, सामाजिक उत्तरदायित्व और राष्ट्रीय उद्देश्यों में सहभागिता करते हैं, तब 'विराट' की अवधारणा को एक प्रकार की सामाजिक सक्रियता के रूप में देखा जा सकता है। फिर भी, आधुनिक लोकतंत्र में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होता है–किसे 'चिति' की प्रामाणिक व्याख्या का अधिकार होगा? यदि राष्ट्र की सांस्कृतिक आत्मा को किसी एक समूह, परंपरा अथवा राजनीतिक संगठन की एकाधिकारवादी व्याख्या के अधीन कर दिया जाए, तो 'चिति' का विचार लोकतांत्रिक बहुलता के लिए चुनौती बन सकता है। इसलिए इसकी अकादमिक व्याख्या को बहुस्तरीय, ऐतिहासिक और संवादात्मक आधार पर विकसित करना आवश्यक है।**

Anusandhanvallari
Vol 2024, No.1
March 2024
ISSN 2229-3388

8. राष्ट्र, राज्य और समाज: उपाध्याय का वैचारिक विभाजन

उपाध्याय के चिंतन की एक विशिष्ट विशेषता राष्ट्र और राज्य के मध्य किया गया अंतर है। आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत में अक्सर राज्य की संस्थागत शक्ति राष्ट्र के साथ जुड़ जाती है, किंतु उपाध्याय के अनुसार राज्य राष्ट्र का पर्याय नहीं है। राज्य शासन और व्यवस्था की राजनीतिक संस्था है, जबकि राष्ट्र का जीवन कहीं अधिक व्यापक सांस्कृतिक और सामाजिक आधार पर विकसित होता है।

इस अंतर के तीन प्रमुख निहितार्थ हैं।

8.1 राष्ट्र राज्य से व्यापक है

राज्य का गठन संवैधानिक और राजनीतिक प्रक्रिया से होता है, जबकि राष्ट्र की चेतना दीर्घ ऐतिहासिक प्रक्रिया से विकसित होती है। इस अर्थ में 'चिति' राष्ट्र की सांस्कृतिक निरंतरता को स्पष्ट करती है।

8.2 समाज राज्य का मात्र अधीनस्थ अंग नहीं है

'विराट' की अवधारणा समाज की सक्रिय शक्ति पर बल देती है। इससे सामाजिक संस्थाओं और नागरिक सहभागिता का महत्त्व बढ़ता है। उपाध्याय का मॉडल अत्यधिक राज्य-केंद्रीकरण के स्थान पर समाज की सृजनात्मक क्षमता को महत्त्व देता है।

8.3 राज्य का नैतिक आधार

यदि राजनीतिक संस्थाएँ समाज से पूर्णतः कट जाएँ, तो वे केवल प्रशासनिक संरचनाएँ बन सकती हैं। 'चिति' की अवधारणा यह प्रश्न उठाती है कि राज्य की नीतियाँ किन व्यापक नैतिक और सामाजिक मूल्यों द्वारा निर्देशित होंगी। इस प्रकार उपाध्याय का राष्ट्र-दर्शन राजनीति के नैतिकीकरण का प्रयास भी है। हालाँकि आधुनिक संवैधानिक लोकतंत्र में राज्य का नैतिक आधार किसी एक सांस्कृतिक परंपरा की अनिवार्य स्वीकृति नहीं हो सकता। समान नागरिकता, विधि का शासन, मौलिक अधिकार और लोकतांत्रिक बहुलता भी आधुनिक राज्य की वैधता के अनिवार्य आधार हैं। अतः 'चिति' को यदि व्यापक नागरिक-सांस्कृतिक मूल्यों की खुली और विकसित होती चेतना के रूप में पढ़ा जाए, तभी यह आधुनिक लोकतांत्रिक ढाँचे के साथ अधिक रचनात्मक संवाद कर सकती है।

9. 'चिति', सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और भारतीय सभ्यतागत विमर्श

उपाध्याय का राष्ट्रवाद सांस्कृतिक आधार पर निर्मित है। उनके अनुसार भारत की एकता केवल आधुनिक राजनीतिक राष्ट्रवाद का परिणाम नहीं, बल्कि दीर्घकालिक सांस्कृतिक संपर्क, तीर्थ-परंपराओं, दार्शनिक विचारों और सामाजिक अनुभवों से निर्मित हुई है। इस अर्थ में 'चिति' भारतीय सभ्यतागत निरंतरता को समझने का वैचारिक माध्यम है। यह दृष्टिकोण राष्ट्रवाद के उस आधुनिक सिद्धांत से भिन्न है जो राष्ट्र को मुख्यतः साझा राजनीतिक इच्छा, नागरिकता या आधुनिक राज्य की

संस्थाओं के परिणाम के रूप में देखता है। उपाध्याय के लिए राष्ट्र की ऐतिहासिकता अधिक गहरी है; राजनीतिक राज्य उसका केवल एक रूप है।

समकालीन अकादमिक विमर्श में एकात्म मानववाद को भारतीय आधुनिकता के एक स्वदेशी वैचारिक विकल्प के रूप में भी पढ़ा गया है। कुछ अध्ययनों ने इसे पश्चिमी पूँजीवाद और केंद्रीकृत समाजवाद के विकल्प की खोज के रूप में देखा है, जबकि अन्य अध्ययनों ने इसके सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और आधुनिक भारतीय राजनीति के साथ संबंधों का विश्लेषण किया है।[9] फिर भी सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की अवधारणा के समक्ष बहुलता का प्रश्न बना रहता है। भारत बहुभाषी, बहुधार्मिक, बहुजातीय और बहुसांस्कृतिक समाज है। इसलिए 'राष्ट्रीय संस्कृति' की कोई भी अवधारणा यदि इस विविधता को एकरूपता में बदलने का प्रयास करती है, तो वह भारतीय सामाजिक वास्तविकता को पर्याप्त रूप से नहीं समझ पाएगी। इसके विपरीत, यदि 'चिति' को विविध परंपराओं के दीर्घकालिक संवाद से निर्मित साझा नैतिक-सांस्कृतिक चेतना के रूप में समझा जाए, तो यह भारतीय बहुलता के अधिक निकट हो सकती है।

10. 'विराट' और समाज की संगठनात्मक चेतना

उपाध्याय के समाज-दर्शन में संगठन केवल प्रशासनिक आवश्यकता नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति है। 'विराट' की अवधारणा समाज की उस स्थिति को इंगित करती है जिसमें व्यक्ति अपने निजी अस्तित्व से ऊपर उठकर व्यापक सामाजिक उत्तरदायित्व का अनुभव करता है। यह विचार आधुनिक समाजशास्त्र में सामाजिक एकजुटता, नागरिक सहभागिता और सामूहिक क्रिया

की अवधारणाओं से तुलनीय है। किंतु उपाध्याय का दृष्टिकोण इन अवधारणाओं से भिन्न इसलिए है क्योंकि वह सामाजिक एकता को केवल संविदात्मक सहयोग या हितों के संतुलन से नहीं, बल्कि एक गहरे नैतिक-सांस्कृतिक संबंध से जोड़ते हैं।

'विराट' की दृष्टि से लोकतंत्र की सफलता केवल चुनावों और संस्थाओं पर निर्भर नहीं करती। लोकतांत्रिक संस्थाएँ तभी प्रभावी होंगी जब समाज में सहयोग, उत्तरदायित्व, सार्वजनिक नैतिकता और राष्ट्रीय हित की चेतना हो। उपाध्याय का यह तर्क लोकतंत्र के सामाजिक आधार की ओर ध्यान आकर्षित करता है। फिर भी यहाँ सावधानी आवश्यक है। लोकतांत्रिक समाज में सामूहिक चेतना का अर्थ सर्वसम्मति नहीं है। असहमति, विरोध और विविध राजनीतिक दृष्टिकोण लोकतंत्र की कमजोरी नहीं, बल्कि उसकी आवश्यक विशेषताएँ हैं। इसलिए 'विराट' को यदि एकरूप राजनीतिक अनुशासन या असहमति-विहीन सामाजिक संगठन के रूप में व्याख्यायित किया जाए, तो यह लोकतांत्रिक सिद्धांत से टकरा सकता है। अधिक उपयुक्त व्याख्या यह होगी कि 'विराट' विविधताओं के मध्य सहयोग और साझा सार्वजनिक उत्तरदायित्व की क्षमता है।

11. व्यक्ति और समाज का संबंध

एकात्म मानववाद की मूल चिंता व्यक्ति और समाज के मध्य कृत्रिम विरोध को समाप्त करना है। उपाध्याय व्यक्ति को समाज में विलीन कर देने वाले पूर्ण सामूहिकतावाद और समाज से स्वतंत्र पूर्ण व्यक्तिवाद–दोनों से भिन्न मार्ग प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार व्यक्ति की स्वतंत्रता और विकास

आवश्यक है, किंतु व्यक्ति का अस्तित्व सामाजिक संबंधों से पूर्णतः पृथक नहीं है। परिवार, समुदाय और समाज व्यक्ति के विकास के संदर्भ प्रदान करते हैं। इसी प्रकार समाज व्यक्तियों की गरिमा और विकास की उपेक्षा करके स्वस्थ नहीं रह सकता। 'चिति' इस संबंध को मूल्यात्मक आधार प्रदान करती है, जबकि 'विराट' इसे सामाजिक संगठन और सामूहिक क्रियाशीलता में अभिव्यक्त करता है। व्यक्ति 'विराट' का निष्क्रिय उपकरण नहीं, बल्कि उसकी चेतन इकाई है। आदर्श स्थिति में व्यक्ति का विकास और समाज का विकास एक-दूसरे के पूरक होने चाहिए। यहाँ एक महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक प्रश्न उत्पन्न होता है कि सामाजिक एकात्मता के नाम पर व्यक्ति के अधिकारों को किस सीमा तक सीमित किया जा सकता है। आधुनिक मानवाधिकार-विमर्श व्यक्ति की गरिमा और स्वतंत्रता को केंद्रीय स्थान देता है। अतः उपाध्याय के एकात्मवादी मॉडल की समकालीन व्याख्या तभी अधिक प्रभावी होगी जब वह सामाजिक कर्तव्यों और व्यक्तिगत अधिकारों दोनों को समान वैचारिक महत्त्व दे।

12. आधुनिकता और 'चिति' का प्रश्न

दीनदयाल उपाध्याय का विचार आधुनिकता के पूर्ण निषेध का दर्शन नहीं है। उनकी चिंता यह थी कि आधुनिक संस्थाओं और तकनीकी प्रगति को अपनाते समय समाज अपनी नैतिक और सांस्कृतिक दिशा से विमुख न हो जाए। इसलिए 'चिति' को परंपरा की जड़ता के रूप में समझना उपयुक्त नहीं है। वास्तव में उनके विचारों में सामाजिक कुरीतियों के सुधार और राष्ट्रीय एकता के लिए बाधक प्रथाओं को समाप्त करने

की आवश्यकता स्वीकार की गई है।[10] इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि 'चिति' का संबंध किसी विशिष्ट ऐतिहासिक प्रथा की अपरिवर्तनीयता से नहीं, बल्कि समाज के जीवनदायी मूल्यों से है।

समकालीन संदर्भ में यह प्रश्न और जटिल हो जाता है। वैश्वीकरण, डिजिटल संस्कृति, प्रवासन और तीव्र सामाजिक परिवर्तन के कारण आधुनिक समाज की पहचानें बहुस्तरीय हो गई हैं। ऐसी स्थिति में 'चिति' को एक बंद और स्थिर सांस्कृतिक सार के रूप में समझना व्यावहारिक नहीं होगा। इसे एक ऐतिहासिक निरंतरता के साथ-साथ आत्मालोचन और पुनर्निर्माण की क्षमता रखने वाली सांस्कृतिक चेतना के रूप में देखना अधिक उपयुक्त है।

13. आलोचनात्मक मूल्यांकन

'चिति' और 'विराट' की अवधारणाओं की वैचारिक शक्ति के साथ उनकी कुछ सीमाएँ भी हैं। एक अकादमिक मूल्यांकन के लिए दोनों पक्षों पर विचार आवश्यक है।

13.1 प्रमुख वैचारिक योगदान

प्रथम, **ये अवधारणाएँ राष्ट्र को केवल राज्य या भूगोल से परे सांस्कृतिक और सामाजिक प्रक्रिया के रूप में समझने का अवसर देती हैं।**

द्वितीय, **'चिति' राजनीति और विकास के नैतिक आधार के प्रश्न को केंद्रीय बनाती है।**

तृतीय, 'विराट' समाज की संगठनात्मक शक्ति और नागरिक उत्तरदायित्व के महत्त्व को रेखांकित करता है।

चतुर्थ, दोनों अवधारणाएँ व्यक्ति और समाज, संस्कृति और राजनीति तथा परंपरा और आधुनिकता के मध्य समन्वय स्थापित करने का प्रयास करती हैं।

पंचम, यह प्रतिमान स्वदेशी राजनीतिक सिद्धांत के निर्माण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण बौद्धिक प्रयास है।

13.2 वैचारिक चुनौतियाँ

प्रथम, 'राष्ट्र की आत्मा' जैसी अवधारणा की अनुभवजन्य पहचान कठिन है। विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच यह प्रश्न उत्पन्न हो सकता है कि 'चिति' की वास्तविक व्याख्या कौन करेगा।

द्वितीय, सांस्कृतिक एकता पर अत्यधिक बल बहुल समाज में अल्पसंख्यक, क्षेत्रीय और वैकल्पिक पहचानों के संबंध में जटिल प्रश्न उत्पन्न कर सकता है।

तृतीय, 'विराट' की सामूहिक शक्ति यदि संस्थागत नियंत्रण और संवैधानिक सीमाओं से मुक्त होकर समझी जाए, तो बहुसंख्यकवाद अथवा अत्यधिक सामूहिकतावाद का जोखिम हो सकता है।

चतुर्थ, आधुनिक लोकतंत्र में राष्ट्र की एकता के साथ असहमति, अधिकार और विविधता की सुरक्षा भी समान रूप से आवश्यक है।

इसलिए 'चिति' और 'विराट' का समकालीन पुनर्पाठ एक आलोचनात्मक पुनर्व्याख्या की माँग करता है। इन्हें स्थिर और अंतिम राजनीतिक सिद्धांतों के रूप में देखने के बजाय ऐसे वैचारिक उपकरणों के रूप में समझना अधिक उपयुक्त होगा जिनके माध्यम से सांस्कृतिक आधार, सामाजिक नैतिकता और सामूहिक क्रियाशीलता के प्रश्नों पर विचार किया जा सकता है।

14. समकालीन प्रासंगिकता

समकालीन भारत में विकास, सामाजिक असमानता, सांस्कृतिक पहचान, नागरिक उत्तरदायित्व और लोकतांत्रिक संस्थाओं के प्रश्न अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। इन संदर्भों में उपाध्याय के 'चिति-विराट' प्रतिमान की प्रासंगिकता को तीन स्तरों पर समझा जा सकता है।

14.1 विकास का सांस्कृतिक और नैतिक आधार

आर्थिक विकास को केवल उत्पादन और आय की वृद्धि से नहीं आँका जा सकता। सामाजिक गरिमा, नैतिकता, पर्यावरण, समुदाय और सांस्कृतिक जीवन भी विकास के महत्त्वपूर्ण आयाम हैं। एकात्म मानववाद का समग्र दृष्टिकोण इस बहुआयामी विकास-विमर्श में योगदान कर सकता है।

14.2 सामाजिक एकता और नागरिक उत्तरदायित्व

'विराट' समाज की संगठित शक्ति और साझा उत्तरदायित्व की ओर संकेत करता है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में नागरिकों की सक्रिय सहभागिता, सामाजिक सहयोग और संस्थागत उत्तरदायित्व की आवश्यकता को इस अवधारणा के माध्यम से समझा जा सकता है।

14.3 बहुलतावादी पुनर्व्याख्या

आज इसकी सबसे बड़ी चुनौती यह है कि 'चिति' को बहुलतावादी समाज में किस प्रकार समझा जाए। यदि इसे किसी एकरूप सांस्कृतिक पहचान के रूप में परिभाषित किया जाए तो इसकी लोकतांत्रिक स्वीकार्यता सीमित होगी। किंतु यदि इसे भारतीय समाज की विविध परंपराओं के बीच विकसित साझा नैतिक चेतना–जैसे मानवीय गरिमा, सहअस्तित्व, सामाजिक न्याय और सार्वजनिक उत्तरदायित्व–के रूप में पुनर्परिभाषित किया जाए, तो यह समकालीन राजनीतिक दर्शन के साथ अधिक रचनात्मक संवाद स्थापित कर सकती है।

15. निष्कर्ष

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्र एवं समाज-दर्शन भारतीय राजनीतिक चिंतन में एक विशिष्ट वैचारिक हस्तक्षेप है। 'चिति' और 'विराट' की अवधारणाओं के माध्यम से उन्होंने राष्ट्र के सांस्कृतिक आधार और समाज की सक्रिय सामूहिक शक्ति के मध्य संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। 'चिति' राष्ट्र के जीवन को दिशा देने वाली अंतर्निहित चेतना, मूल्य-बोध और सांस्कृतिक प्रकृति का

प्रतिनिधित्व करती है, जबकि 'विराट' उस चेतना से प्रेरित संगठित सामाजिक शक्ति और क्रियाशीलता का प्रतीक है। इस प्रकार उपाध्याय के विचार में राष्ट्र का स्वस्थ जीवन केवल राजनीतिक संस्थाओं से संभव नहीं है। उसके लिए सांस्कृतिक आत्मबोध, नैतिक दिशा, सामाजिक संगठन और नागरिक सक्रियता–सभी आवश्यक हैं। 'चिति' दिशा देती है और 'विराट' उस दिशा को जीवन की शक्ति प्रदान करता है। फिर भी आधुनिक अकादमिक विश्लेषण के लिए इन अवधारणाओं को आलोचनात्मक दृष्टि से पढ़ना आवश्यक है। राष्ट्र की सांस्कृतिक आत्मा की अवधारणा तभी लोकतांत्रिक रूप से सार्थक हो सकती है जब वह विविधता और बहुलता को स्वीकार करे। इसी प्रकार सामूहिक शक्ति तभी लोकतांत्रिक होगी जब वह व्यक्ति की स्वतंत्रता, संवैधानिक अधिकारों और असहमति के अधिकार के साथ संतुलन स्थापित करे।

अतः 'चिति' और 'विराट' की सबसे रचनात्मक समकालीन व्याख्या उन्हें क्रमशः **बहुलतावादी सांस्कृतिक-नैतिक चेतना** और **लोकतांत्रिक सामाजिक क्रियाशीलता** के रूप में देखने में निहित है। इस पुनर्पाठ के माध्यम से दीनदयाल उपाध्याय के राष्ट्र-दर्शन को केवल राजनीतिक विचारधारा के इतिहास तक सीमित रखने के बजाय भारतीय राजनीतिक सिद्धांत, राष्ट्रवाद, सामाजिक एकता और स्वदेशी आधुनिकता के व्यापक अकादमिक विमर्श में स्थापित किया जा सकता है।

संदर्भ सूची / Reference

1. Abraham, John. “In Search of Dharma: Integral Humanism and the Political Economy of Hindu Nationalism.” *South Asia: Journal of South Asian Studies*, Vol. 42, No. 1, 2019, pp. 16–32.
2. Banerjee, Arpan and Rohit Kumar. “Pandit Deen Dayal Upadhyaya's Cultural Nationalism and New India.” *Journal of East-West Thought*, Vol. 15, No. 1, 2025.
3. Das, Krishnendu. “Integral Humanism: An Introduction to Pt. Deendayal Upadhyaya’s Philosophy.” *The Banyan Tree Journal*, No. 1, June 2025, pp. 59–64.
4. Dhasmana, Janardan. *Pandit Deendayal Upadhyaya: Ideology and Perception*. New Delhi: Suruchi Prakashan.
5. Graham, Bruce D. *Hindu Nationalism and Indian Politics: The Origins and Development of the Bharatiya Jana Sangh*. Cambridge: Cambridge University Press.
6. Nain, Ansuiya and Sanjeev Kumar Sharma. “Integral Humanism of Deen Dayal Upadhyaya and its Contemporary Relevance.” Scholarly study on Integral Humanism and contemporary relevance.
7. Singh, Sudhir. “Relevance of Deen Dayal Upadhyaya’s Integral Humanism in the Context of Viksit Bharat (2047).” 2026.
8. Singh, Rajinder. “Integral Humanism and Contemporary Indian Politics: A Study of Deen Dayal Upadhyaya’s Vision.” *Asian Journal of Multidimensional Research*, Vol. 14, No. 11, 2025.
9. Upadhyaya, Deendayal. *Integral Humanism: An Analysis of Some Basic Elements*. New Delhi: Prabhat Prakashan, 2009.
10. Upadhyaya, Deendayal. *Political Diary*. New Delhi: Suruchi Prakashan.
11. Upadhyaya, Deendayal. ***एकात्म मानववाद*. विभिन्न संस्करण, नई दिल्ली/बरेली: संबंधित प्रकाशन।**

12. Dwivedi, Akhilesh Kumar and Om Prakash Gupta. “The Political Ideas of Pandit Deendayal Upadhyaya: Integral Humanism and the Quest for Indigenous Modernity.” *International Journal of Innovative Research and Creative Technology*, 2026.